आध्यात्मिक योग और प्राणशक्ति

□ मुनि नथमल

साधना के तीन पक्ष हैं—अध्यात्म, प्राण और व्यवहार। हमें केवल प्राण-विद्या पर अटकना नहीं है। हमारा मुख्य ध्येय है—अध्यात्म, आत्मिक विकास। यह चैतन्य-विकास की सबसे ऊँची भूमिका है।

दूसरा है—प्राण का प्रयोग। वह भी आवश्यक है। हम प्राणबल, मनोबल और शक्ति का विकास करें जिससे कि अध्यात्म तक पहुँचने में सुविधा हो।

तीसरी बात है—व्यवहार की। अध्यात्म की साधना चल रही है। प्राण की साधना चल रही है और यदि व्यवहार में कोई परिवर्तन नहीं आता है तो लोगों के लिए मखौल की बात बन जाती है। हमारा व्यवहार भी साथ-साथ बदलना चाहिए। अध्यात्म का विकास होता है तो व्यवहार अपने आप ही बदलता है, बदले बिना रह नहीं सकता, फिर भी उसकी साधना साथ-साथ चलनी चाहिए। व्यवहार की साधना भी अध्यात्म के लिए पूरक और सह-योगी सिद्ध होगी। अब मैं एक प्रयोग की चर्चा करूँगा।

अध्यात्म की दृष्टि से आप छह मास तक अहं-विसर्जन का प्रयोग करें। अहंकार और ममकार—ये दो ही हमारी अध्यात्म साधना की, चैतन्य-विकास की बाधाएँ हैं। आप अहं-विसर्जन का अभ्यास करें। प्राण-साधना की दृष्टि से दो बातें हैं—एक है दीर्घश्वास और दूसरी है समताल-श्वास। आप इन दोनों का अभ्यास करें। श्वास लम्बा लें। श्वास जितना लम्बा होगा, उतना ही मन में विकार कम आएगा। क्रोध कम आएगा, आवेग कम आएगा। श्वास जितना छोटा है, उतना ही विकार ज्यादा आता है। जब श्वास लम्बा होता है, पूरा होता है, वह हमारे भीतर जो उत्तेजना देने वाले पदार्थ हैं उन्हें बाहर निकाल फेंकता है। इसके पीछे एक वैज्ञानिक कारण है। फेफड़ों में रक्त की छनाई होती है। हार्ट पम्पिंग का काम करता है। वहाँ से रक्त पम्पिंग होता है, सारे शरीर में पहुँचता है। वह संस्कारों को लेकर बहता है। जितना शुद्ध रक्त जायेगा, मन उतना ही शान्त रहेगा। आवेग कम होंगे। रक्त जितना दूषित होगा, स्वभाव चिड़चिड़ा बन जायेगा, क्रोध अधिक आने लगेगा। जब हम दीर्घश्वास लेते हैं, पूरा श्वास लेते हैं, तो जो कार्बन है, जितनी खराबी जमती है, वह सारी की सारी उस श्वास के साथ बाहर निकल जाती है। श्वास छोटा लेते हैं तो न पूरा आक्सीजन अन्दर जाता है और भीतर जो मैल जमा है वह भी पूरा बाहर नही निकलता। इसलिए आदमी का स्वभाव नहीं बदलता। दीर्घश्वास का अभ्यास बहुत जरूरी है।

दूसरी बात है—हम समताल-श्वास लें। संगीत में जब तक ताल सम नहीं होता तब तक संगीत का आनन्द नहीं आता। ताल सम होना चाहिए। श्वास में भी ताल का मूल्य है। श्वास समताल होना चाहिए। जितने समय में पहला श्वास लिया, जितने समय रोका या छोड़ा, दूसरा श्वास भी उतने ही समय में आये, तीसरा श्वास भी उतने ही समय में आये। समय का अन्तर न हो। जब हम चलते हैं तब एक पैर तो यहाँ रखा, दूसरा पैर एकदम आगे रख दिया, तीसरा फिर और कहीं रख दिया तो गति नहीं बनेगी। गति तब बनती है जब पैर बराबर उठते जाते हैं। समताल-श्वास आवश्यक होता है। मान लीजिए कि पहला श्वास लेने छोड़ने में बीस सेकण्ड लगते हैं, तो दूसरे-तीसरे श्वास में भी बीस सेकण्ड ही लगने चाहिए। यह है समताल-श्वास। इससे एक ऐसी लयबद्धता उत्पन्न होती है कि आदमी सहज ही ध्यान की स्थिति में चला जाता है। शान्त हो जाता है। ध्यान का मतलब यह नहीं कि हम बैठकर जो करते हैं, वही ध्यान है। जब हमारा मन शान्त रहे, मन अशान्त और उद्विग्न न हो, वह सारी ध्यान की स्थिति है। यह समताल-श्वास की निष्पत्ति है। प्राण की दृष्टि से दो बातें हैं—दीर्घश्वास और समताल-श्वास।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अब तीसरी बात है—व्यवहार की। व्यवहार की दृष्टि से साधक को करुणा का अभ्यास करना चाहिए। यह अभ्यास लम्बे समय तक चले। प्रतिपल हम इसका जागरूकता से अभ्यास करें। अपने बच्चों के प्रति, अपने परिवार के प्रति, अपने नौकर के प्रति करुणा करें, सबके प्रति करुणा करें। किसी के प्रति क्रूर व्यवहार न करें, क्रूरता न दिखायें। जब कभी मन में क्रूरता आयेगी, हम संभलेंगे और करुणा करेंगे। यदि करुणा हमारे मन में आती है, जीवन में आती है तो अनेक व्याधियाँ अपने आप मिट जाती हैं। बहुत सारे अन्याय क्रूरता के कारण होते हैं। आदमी क्रूर होकर अन्याय करता है। यदि करुणा का अभ्यास होता है, विकास होता है तो ये सारी स्थितियाँ समाप्त हो जाती हैं। जैन परम्परा में यह माना गया है कि जिसमें करुणा नहीं है वह सम्यक्दृष्टि भी नहीं हो सकता। सम्यक्दृष्टि का एक लक्षण है—अनुकम्पा। यदि आदमी में अनुकम्पा है, करुणा है तो समझ लो कि वह सम्यक्दृष्टि है। यदि करुणा नहीं है तो वह मिथ्यादृष्टि है। यह कसौटी है पहचानने की कि कौन सम्यक्दृष्टि है और कौन मिथ्यादृष्टि। यह हमारे व्यवहार का सूत्र है।

अध्यात्म की साधना में अहं का विसर्जन, प्राण की साधना में दीर्घश्वास तथा समताल-श्वास और व्यवहार की साधना में करुणा का अभ्यास—ये प्रयोग के तीन आयाम हैं। इनसे तीन बातें फलित होंगी, सिद्ध होंगी। पहली बात होगी—अहं का विसर्जन, दूसरी बात होगी—वासना-विजय, तीसरी बात होगी—करुणा का अभ्यास।

चौथी बात है—जप। इन तीनों बातों को बल देने के लिए जप बहुत ही आवश्यक है, क्योंकि इससे हमारी सारी शक्ति में परिवर्धन होता है। शक्ति का विकास होता है। जप प्राणशक्ति और आत्मशक्ति दोनों को प्रभावित करता है। इसके लिए आप नवकार का जप करते हैं, माला फेरते हैं। वही चले आपका क्रम। विधि में थोड़ा सा परिवर्तन आपको सुझा दूं। कोई नवकार मंत्र की एक माला फेरता है। कोई दो माला और कोई पाँच माला फेरता है। यह आप फेरते रहें। एक परिवर्तन करें। एक माला मेरे द्वारा बतायी विधि से फेरें। आप नमस्कार मंत्र का एक चरण लें—**'णमो अरहंताण'**। इस चरण का आपको जप करना है। श्वास लेते समय इसका जप न करें, उच्चारण न करें। श्वास छोड़ते समय भी इसका जप न करें। पूरक में भी इसका जप न करें और रेचन में भी इसका जप न करें। इसका जप कुंभक की अवस्था में करें। आपने श्वास लिया, पूरक किया, अभी उसे अन्दर टिकाए हुए हैं। कुम्भक की अवस्था में हैं। श्वास को बाहर छोड़ा नहीं है। उस अवस्था में आप उसका जप करें। **'णमो अरहंताण'** का उच्चारण करें। फिर श्वास को निकाला, फिर श्वास लिया। निकालते समय भी जप नहीं करना है। न लेते समय करना है और न निकालते समय करना है। फिर श्वास को अन्दर रोका, कुंभक किया। तब **'णमो सिद्धाणं'** का जप करें। कुंभक की स्थिति में ही जप हो। यह जरूरी नहीं कि पूरी माला ही फेरी जाये। दस बार भी इस विधि से यदि नमस्कार महामन्त्र का जप होता है तो वह बहुत लाभदायी है, मूल्यवान् है। जितनी आपको सुविधा है, उतनी देर करें। पर एक सुझाव है। कम से कम इक्कीस बार अवश्य करें। एक माला फेरते हैं तो बहुत अच्छा है अन्यथा इतना तो अवश्य ही हो। आपकी स्थिरता बढ़ेगी। एकाग्रता बढ़ेगी। जप करने की यह एक विधि है। कुंभक की स्थिति में जप हो यानी पूरक और रेचन के बीच की स्थिति में जप हो। यह एक विधि है।

इसके साथ-साथ रंग का ध्यान भी आवश्यक है तो स्थान का ध्यान भी बहुत जरूरी है। किस पद को किस रंग के साथ, शरीर के किस भाग में जपना है, यह जानना भी जरूरी है। जप के साथ चार बातें जुड़ गयीं—पद, रंग, स्थान और श्वास की स्थिति।

हम **'णमो अरहंताणं'** को लें। इसका वर्ण है श्वेत और स्थान है—मस्तिष्क, सहस्रार चक्र। इस पद का उच्चारण करते समय मन सहस्रार चक्र में स्थित हो और श्वेत वर्ण का चिन्तन हो, आभास हो। सहस्रार चक्र अर्थात् ब्रह्मरंध्र, तालु के ऊपर का भाग। हमारी स्थिति कुंभक की हो। तो चार बातें हो गयीं—

पद है—णमो अरहंताणं।
रंग है—श्वेत।
स्थान है—सहस्रार चक्र (ब्रह्मरंध्र, तालु के ऊपर का स्थान)।
श्वास की स्थिति है—कुंभक। अन्तर् कुंभक।

हम **'णमो सिद्धाणं'** को लें। अब हम 'णमो अरहंताणं' से आगे चलें। **'णमो सिद्धाणं'** को लें। इसका वर्ण है लाल। इसका स्थान है—ललाट का मध्य भाग, आज्ञा चक्र। श्वास की स्थिति होगी—अन्तर् कुंभक।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'णमो आयरियाणं'—यह तीसरा पद है। इसका रंग है पीला। इसका स्थान है—विशुद्धि चक्र, गला। यह पवित्रता का स्थान है, चक्र है। हमारी सारी भावनाओं, आवेगों पर नियन्त्रण रखने वाला यही स्थान है। श्वास की स्थिति होगी—अन्तर् कुंभक।

'णमो उवज्झायाणं'—यह चौथा पद है। इसका रंग है नीला। इसका स्थान है—हृदय-कमल। श्वास की स्थिति है—अन्तर् कुंभक।

'णमो लोए सव्वसाहूणं'—यह पाँचवाँ पद है। इसका रंग है—कृष्ण, काला। इसका स्थान है—पैरों का अंगूठा। श्वास की स्थिति है—अन्तर् कुंभक।

पाँचों पदों के वर्ण भिन्न हैं, स्थान भिन्न हैं। श्वास की स्थिति पाँचों में समान है। तो प्रत्येक के साथ—पद, वर्ण, स्थान और श्वास की स्थिति—चारों बातें जुड़ी हुई हैं। अब इनके साथ हमारे मन का पूरा योग रहना चाहिए। मन का योग होने से पाँच बातें हो गयीं। पाँचों का विधिवत् योग होने से ही जप शक्तिशाली होता है। एक की भी कमी, परिणाम में न्यूनता ला देती है।

आप अहं का विसर्जन करना चाहते हैं, करुणा का विकास करना चाहते हैं और श्वास पर नियन्त्रण चाहते हैं, ये तीनों इस जप से सधते हैं। मन्त्र शक्तिशाली बन जाता है। आज आप समझते हैं कि नवकार मन्त्र का इतना जाप किया, कितनी मालाएँ फेरीं, वर्षों तक क्रम चलता रहा, पर लाभ, दृश्यलाभ कुछ भी नहीं हुआ। यह अनुभूति एक ही नहीं, अनेक व्यक्तियों की हो सकती है। आप ऊपर बताये हुए क्रम से जप करें और छह मास बाद बतायें कि परिवर्तन हुआ या नहीं ? परिवर्तन अवश्य होगा। मैंने इस प्रयोग की चर्चा की। जो लोग बहुत सारे प्रयोगों में जाना नहीं चाहते, जिनमें अनेक प्रयोग करने की क्षमता भी नहीं है, वे इस प्रयोग को पकड़ें। इसे हृदयंगम कर लें। इससे चार बातें फलित होंगी।

पहली बात है—अहं का विसर्जन। इसका अर्थ है—विनम्रता। यह भी एक समाधि है। भगवान् महावीर ने चार समाधियाँ बतायी हैं—विनयसमाधि, श्रुतसमाधि, तपसमाधि और आचारसमाधि। पहली है—विनय-समाधि। यह है अहं का विसर्जन। अहं स्वयं की उद्दण्डता है, अपनी चण्डता है, प्रकृति का उद्धतपन है। आदमी अपने आपको बहुत मानने लग जाता है। यह है अहं। विनय का अर्थ क्या है ? 'विनयनं'—दूर करना, हटाना। विनय का मतलब है—दूर कर देना, हटा देना, अपसारित कर देना। जो हमारे भीतर कषाय का भाव है, अहं है, उसे दूर करना, यही है विनय, विनम्रता। विनम्रता दूसरे के प्रति नहीं होती। यह तो अपना स्वयं का गुण है। अहंकार स्वयं का ही दोष है। विनय का अभ्यास करना, विनयसमाधि में रहना, आत्म-समाधि में रहना है। यह समाधि अहंकार के विसर्जन से फलित होती है। इससे स्वयं को समाधान मिलता है, एकाग्रता सिद्ध होती है।

दूसरी बात है—करुणा का अभ्यास।

तीसरी बात है—प्राण की साधना।

चौथी बात है—मन्त्र का विधिवत् जप।

ये चारों बातें मिलती हैं तब पूरा प्रयोग बनता है। इस प्रकार के प्रयोग से सिद्धि प्राप्त होती है। इससे हमारा चतुर्मुखी विकास होता है। किसी एक अंश का विकास नहीं होता, सब अंशों का विकास होता है। केवल प्राण-कोश का विकास हो जाये और स्वभाव न बदले तो वह शक्ति हमारे लिए बहुत खतरनाक बन जाती है। हमारे लिए दुःखदायी बन जाती है। हम आत्मा का विकास करना चाहते हैं, किन्तु यदि प्राण का विकास नहीं होगा तो दुर्बल प्राण आत्मा तक नहीं पहुँच पायेंगे। उपनिषदों में एक सुन्दर बात कही है—**'नायमात्मा बलहीनेन लभ्यः'**—बलहीन या वीर्यहीन व्यक्ति आत्मा को नहीं पा सकता। आत्मा तक नहीं पहुँच सकता। कमजोर कुछ नहीं कर सकता, कुछ नहीं पा सकता।

करुणा का अभ्यास और अहं का विसर्जन—ये दो बातें आपके संकल्प पर निर्भर रहेंगी, संकल्प के सहारे चलेंगी। करुणा का व्यवहार में प्रयोग होगा, किन्तु अभी यह भूमि प्रयोग करने की नहीं है। अभी आप किस पर क्रूरता करते हैं ? किस पर करुणा करते हैं ? यह स्वयं आप पर निर्भर हैं। आपको स्वयं ही सोच-समझकर प्रयोग करना है। दीर्घश्वास, समताल-श्वास और नमस्कार मन्त्र का जप—इनका प्रयोग कराया जा सकता है, सीखा जा सकता है।

दो आदमी नदी के तट पर पहुँचे। उन्हें नदी पार करनी थी। उन्होंने देखा, नौका पड़ी है। पहला बोला—'नाविक तो नहीं है, पर नौका पड़ी है। नदी पार कर लेंगे।' दूसरा बोला—'ऐसा नहीं हो सकता। नदी को पार करने के लिए केवल नौका ही पर्याप्त नहीं है। नाविक भी चाहिए, डांड भी चाहिए, नौका को खेने की कला भी चाहिए। ये सब हों, तब नदी को पार किया जा सकता है।' पहला बोला—'यह कैसे हो सकता है ? जीवन भर सुनते आये हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कि नदी को पार करना हो तो नौका से उसे पार कर लो। नौका पड़ी है। क्या आवश्यकता है दूसरी चीजों की ?' दूसरे ने समझाया, पर वह नहीं माना। उसने नौका को खोला। अकेला ही उसमें बैठ गया। पानी की एक हिलोर आयी और नौका आगे बहने लगी। नौका तैराने वाली थी पर आज वह उस यात्री के डूबने का कारण बन गयी। जो तैराने वाला होता है, वह कभी-कभी डुबोने वाला भी हो जाता है। वास्तव में तैराने वाला और डुबोने वाला—दो नहीं होते, एक ही होते हैं। जो तैराने वाला है वही डुबोने वाला है और जो डुबोने वाला है वही तैराने वाला है। ये दो हैं नहीं वास्तव में। यह तो संयोग का अन्तर है। वह नौका चली। आदमी शांत बैठा है। पानी का बहाव तेज था, धारा तेज थी। नौका डगमगाने लगी। कुछ दूर जाकर नौका उलट गयी। यात्री पानी में डूब गया।

यह बात तो ठीक है कि नौका पार ले जाती है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि कोरी नौका, अकेली नौका पार ले जाती है। इसके साथ कुछ और सामग्री भी चाहिए। जो व्यक्ति एक अंश को पकड़ता है, शेष की उपेक्षा करता है उसके लिए तैराने वाली वस्तु भी डुबोने वाली हो जाती है।

ठीक ऐसा ही हमारे जीवन में घटित होता है। हम समझते हैं कि ॐकार बड़ा मन्त्र है। 'अर्हम्' महत्वपूर्ण मन्त्र है। **'णमो अरहताणं'** बड़ा मन्त्र है। इनका जाप करें, सारे काम सिद्ध होंगे। बात तो ठीक है और यह भी ठीक नौका जैसी ही बात है कि नौका में बैठो, पार पहुँच जाओगे। मन्त्र का जप करो, सब सिद्ध हो जायेगा। बात तो सही है। कोरे मन्त्र को पकड़ लिया और बरसों तक जाप करते चले गये, कुछ भी नहीं हुआ, कुछ अनुभव नहीं हुआ, काम सिद्ध नहीं हुआ। ऐसी स्थिति में लोग कहने लग जाते हैं—इतने बरसों तक मन्त्र का जप किया, माला फेरी, पर कुछ भी चमत्कार नहीं हुआ। कुछ भी नहीं हुआ। यानी वह नौका तैरा नहीं रही है, लगता है डुबोने के प्रयत्न में है या डुबो रही है। कुछ कहते हैं—इतने दिन तक तो हमने विश्वास के साथ माला फेरी, मन्त्र का जप किया, अमुक-अमुक अनुष्ठान किये, पर लगा नहीं कि कुछ हो रहा है तब हमने माला छोड़ दी, जप छोड़ दिया। मन में विश्वास ही नहीं रहा उन पर। इसका अर्थ है कि वे व्यक्ति स्वयं मझधार में आकर डूब जाते हैं। ऐसा क्यों होता है ? ऐसा इसलिए होता है कि हम पूरी बात को नहीं जानते, पूरी बात को नहीं पकड़ते। हमें पूरी बात को जानना चाहिए, पूरी बात को पकड़ना चाहिए। मन्त्र में शक्ति है, यह बात ठीक है। मन्त्र तैराने वाला है, किन्तु सब कुछ केवल मन्त्र से ही तो नहीं होगा। इसके साथ कुछ और भी चाहिए। सबसे पहले आप इस बात पर ध्यान दें कि मन्त्र के साथ आपके मन का योग हुआ है या नहीं ? आप मन्त्र का जप तो कर रहे हैं, किन्तु मन उसमें संयुक्त नहीं है तो कुछ नहीं होगा। अर्थात् नदी को पार करने से पूर्व, नौका में बैठने से पूर्व आपको देखना होगा कि नाविक है या नहीं ? नाविक भी नहीं है और आप स्वयं नौका को खेना तक नहीं जानते तो निश्चित ही वह नौका आपको पार नहीं पहुँचा पायेगी, बीच में ही डुबो देगी। मन्त्र में शक्ति है, पर आपका मन यदि उसमें संयुक्त नहीं है, आपके मन का योग उसमें नहीं है, उसे चला नहीं रहा है, खे नहीं रहा है तो वह मन्त्र भी गड़बड़ी पैदा कर देगा। हमें पूरी बात पकड़नी चाहिए। पहली बात है मन के योग की। मन के योग के बिना जो भी काम किया जाता है, वह पूरा नहीं होता, अधूरा ही रह जाता है। आदमी खाता है और यदि मन खाने में संयुक्त नहीं है तो उसका खाना भी अधूरा है। आदमी चलता है और यदि मन साथ नहीं है तो उसका चलना भी अधूरा है; अधूरे मन से चलता है, पूरे मन से नहीं। आप स्वयं इस तथ्य का अनुभव करें। क्या आप कभी पूरे मन से खाते हैं ? कभी नहीं। क्या आप ऐसा करते हैं कि खाते समय खाते ही हैं और कुछ नहीं करते ? न सोचते हैं, न बोलते हैं और न इशारा करते हैं। क्या आपका मन पूर्णरूप से खाने में ही लगा रहता है ? नहीं, कभी नहीं। खाते-खाते आप सैकड़ों काम कर लेते हैं। कहाँ से कहाँ चले जाते हैं ? कितनी यात्राएँ कर लेते हैं ? कितनी कल्पनाएँ कर लेते हैं ? कितनी योजनाएँ बना लेते हैं ? आप पूरे मन से नहीं खाते, अधूरे मन से खाते हैं। इसका तात्पर्य है कि मन का एक कोना खाने में काम आता है और शेष हजारों कोने अलग-अलग काम करते चले जाते हैं। चलते हैं तो भी पूरे मन से नहीं चलते। चलते हैं तब मन का एक भाग चलने में सहयोग दे रहा है, चलने में संयुक्त है और शेष हजारों भाग न जाने कहाँ-कहाँ उड़ानें भरते रहते हैं। यही बात मन्त्र-जप में लागू होती है। पूरे मन से मन्त्र-जप कहाँ होता है ? मन का एक भाग मन्त्र-जप में लगा हुआ है और शेष हजारों भाग अन्यान्य कल्पनाओं में व्यस्त हैं।

एक भाई कह रहा था कि जब अन्यान्य कामों में लगा रहता हूँ तब मेरा मन प्रायः उसी कार्य में संलग्न रहता है किन्तु ज्योंही मैं माला फेरने या जप करने बैठता हूँ, अनगिनत कल्पनाएँ मन में आने लगती हैं। दिमाग भर जाता है उन कल्पनाओं से।

पूरे मन से कोई काम नहीं होता। यही तो हमारी साधना की कमी है। साधना का अर्थ क्या है ? साधना में आप और कुछ सीखें या न सीखें, यह अवश्य सीख लें कि जो भी काम करना है वह पूरे मन से करना है। समग्रता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

से करना है अर्थात् उस काम में मन को समग्र रूप से लगा देना है। मन को इतना लगा देना है कि मन के सारे कोने उसमें तन्मय हो जायें। एक भी कोना खाली न रहे, ताकि उसे भागने के लिए अवकाश ही न मिले। उसके सामने अवकाश रहे ही नहीं। बेचारा भागेगा कैसे ? कहाँ भागेगा ? यह स्थिति यदि प्राप्त हो जाती है तो साधना सफल है। आप चाहें इसे साधना की पहली सफलता कहें या अन्तिम सफलता, यह एकमात्र रहस्य है साधना का। इसका तात्पर्य यह है कि साधना के द्वारा मन को इतना प्रशिक्षित कर देना कि हम जिस काम में उसे लगाना चाहें, वह उसी काम में लगे। हम जिस काम में उसे लगाना न चाहें, वह उस ओर झाँके ही नहीं। यदि इतना प्रभुत्व स्थापित हो जाता है मन पर, तब कोई समस्या उत्पन्न ही नहीं होगी। फिर हम अपने मन के मालिक हो जाते हैं। हम जो चाहें कर सकते हैं, जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं। मन का अनेक टुकड़ों में बँट जाना ही समस्या है। हमारा मन इतने टुकड़ों में बँटा हुआ है कि हम उनकी गिनती भी नहीं कर सकते। यह बँटा हुआ मन सबसे बड़ी समस्या है मानव मात्र की। भगवान महावीर ने कहा—**'अणेगचित्ते खलु अयं पुरिसे'**—मनुष्य अनेक मन वाला है। वह एक मन वाला नहीं है। अनेक मन हैं उसके। वह अनेक भागों में बँटा हुआ है। इसीलिए वह किसी बात को पूरे मन से नहीं सोच पाता। यदि वह पूरे मन से सोचने लग जाय तो सचमुच ही उसकी नौका पार लग सकती है, अन्यथा नहीं।

तो सबसे पहले आप देखें कि मन्त्र के साथ आपका मन संयुक्त है या नहीं। मन की पूरी शक्ति मन्त्र के साथ है या नहीं ? मन्त्र और मन दो बातें हैं।

तीसरी बात है—आप मन्त्र के अर्थ को जान रहे हैं या नहीं ? मन्त्र के अर्थ को जानना बहुत जरूरी है। यदि मन्त्र का अर्थ नहीं जान रहे हैं तो आप जो करना चाहते हैं, जो होना चाहते हैं, वह नहीं कर सकेंगे, वह नहीं हो सकेंगे।

परिणमन का सिद्धान्त शाश्वत है। कोई भी वस्तु शाश्वत नहीं है, स्थायी नहीं है। सब परिणमनशील हैं। परिणमन सत्य है। हर चीज बदलती है। परमाणु नष्ट नहीं होते। जो आकार है, जो संस्थान है जो रूप है, वह स्थायी नहीं हो सकता। सब परिणमनशील हैं। सब कुछ बदलेगा। आदमी भी बदलता रहता है। आत्मा शाश्वत है। वह नहीं बदलता। आदमी बदलता है। इसलिए आदमी जो होना चाहता है वैसा हो सकता है, उस रूप में बदल सकता है। उसका जो संकल्प होगा, उसी रूप में बदल जायेगा। आदमी जीवन के पहले क्षण से बदलता रहता है। प्रतिक्षण बदलता है। बदलने का क्रम बन्द नहीं होता। इसलिए संकल्प के अनुरूप वह बदल जाता है। अगर संकल्प नहीं है तो दूसरे रूप में बदलेगा। अगर संकल्प है तो संकल्प के अनुरूप बदलेगा।

हमारे शरीर में कोशिकाएँ हैं जो शरीर की मूल घटक हैं। वे शरीर का निर्माण करती हैं। बहुत बड़ी संख्या है उनकी। हमारे शरीर में साठ हजार अरब कोशिकाएँ हैं। हमारे मस्तिष्क में प्रति घन सेमी० करोड़ कोशिकाएँ हैं। शरीर की कोशिकाएँ प्रतिक्षण नष्ट होती हैं, नयी बनती हैं। हजारों कोशिकाएँ मरती हैं और हजारों नई जन्मती हैं। पुरानी क्षीण होती हैं और नई बनती हैं। यह चक्र निरन्तर चल रहा है। जब आदमी की अवस्था के अनुसार कोशिकाएँ क्षीण अधिक होती हैं और बनती कम हैं तब शरीर में क्षीणता आती है, मस्तिष्क कमजोर होता है। इन्द्रियाँ क्षीण हो जाती हैं, मस्तिष्क का नियन्त्रण ढीला हो जाता है। जवान आदमी अपने शरीर पर, अपने मस्तिष्क पर, अपने मन पर चाहे जैसा नियन्त्रण कर सकता है किन्तु बूढ़े आदमी की नियन्त्रण शक्ति क्षीण हो जाती हैं, ढीली हो जाती है। इसका कारण है कि साठ-सत्तर वर्ष की अवस्था में दस प्रतिशत मस्तिष्क क्षीण हो जाता है। इतनी कोशिकाएँ मर जाती हैं कि मस्तिष्क की शक्ति कम हो जाती है। यह शरीर के भीतर चलने वाला अवश्यम्भावी क्रम है। हम एक चिता को देखकर डर जाते हैं और कह देते हैं—अरे ! चिता जल रही है। मुर्दा जल रहा है। हम अपने भीतर देखें। एक नहीं, हजारों चिताएँ जल रही हैं निरन्तर। हजारों कोशिकाएँ मर रही हैं। हजारों कोशिकाओं का जन्म हो रहा है। जन्म और मरण—दोनों साथ-साथ चल रहे हैं। एक ओर श्मशान है तो दूसरी ओर प्रसूतिगृह। एक में मुर्दे जलाये जा रहे हैं, चिताएँ सजाई जा रही हैं और एक में नये-नये चेहरे जन्म ले रहे हैं, सूर्य की किरण का पहला स्पर्श कर रहे हैं। विचित्र है यह शरीर। हम इसे केवल बाहर से देखते हैं। बाहर हम श्मशान भी देखते हैं और प्रसूतिगृह भी देखते हैं। जन्मते बच्चों को भी देखते हैं और मरते बूढ़ों को भी देखते हैं। सब कुछ देखते हैं बाहर से, परन्तु भीतर से कुछ भी नहीं देखते। भीतर एक चक्र चल रहा है। निरन्तर बदल रहा है भीतर। तो क्या आप बदलते नहीं ? बदल तो रहे हैं। प्रतिक्षण संघर्ष चल रहा है भीतर। बनने और मिटने का काम हो रहा है निरन्तर। यह सारा स्वाभाविक हो रहा है। यदि आप संकल्प करें तो उस बदलने में परिवर्तन ला सकते हैं। यानी आप जो होना चाहें, वह हो सकते हैं। यह सारा का सारा होता है प्राण के स्तर पर।

दो वस्तुएँ हैं—आत्मा और प्राण। एक है आत्मशक्ति और एक है प्राणशक्ति। एक है प्राणबल और एक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आत्मबल। हमारा लक्ष्य है—आत्मोपलब्धि। हम आत्मा के मूल स्तर तक पहुँचना चाहते हैं, आत्मा को पाना चाहते हैं, मूल चेतना तक पहुँचना चाहते हैं। यह है हमारा मूल लक्ष्य। इससे पहले आता है प्राण। उसका स्थान इससे पूर्व है। आत्मा तक कौन पहुँच पाता है? आत्मा तक वही पहुँच पाता है जो प्राणवान् है, जो शक्तिशाली है। जिसका मनोबल ऊँचा है, जिसका संकल्प-बल प्रबल है वह पहुँच सकेगा आत्मा तक। जिसकी इच्छाशक्ति प्रबल है वह आत्मा तक पहुँच पायेगा। जिसका मनोबल क्षीण है, जिसका संकल्प-बल क्षीण है, जिसकी इच्छा-शक्ति, प्राणशक्ति दुर्बल है, जो वीर्यहीन है वह कभी आत्मा को नहीं पा सकता। आत्मा को पाने के लिए प्राण को शक्तिशाली बनाना जरूरी है। जो जप का स्तर है, वह प्राण के स्तर पर चलने वाला क्रम है। यह प्राण को शक्तिशाली बनाता है। प्राण हमारी विद्युत्-शक्ति है। हर प्राणी में यह शक्ति होती है। कोई भी प्राणी ऐसा नहीं होता जिसमें यह शक्ति न हो। हमारी सारी सक्रियता, चंचलता, हमारा उन्मेष और निमेष, हमारी वाणी, हमारा चिन्तन, हमारी गति, हमारी दीप्ति, हमारा आकर्षण—ये सब प्राण के आधार पर होते हैं, विद्युत्-शक्ति के आधार पर होते हैं। विद्युत् ही ये सारे कार्य निष्पन्न करती है। हमारे शरीर में यह विद्युत् मौजूद है। इसे हम तैजस् शरीर कह सकते हैं, प्राण कह सकते हैं। विद्युत् को बढ़ाना मनोबल को बढ़ाना है। जिसकी विद्युत् तीव्र होती है उसका मनोबल बढ़ जाता है। जिसकी विद्युत् क्षीण होती है उसका मनोबल घट जाता है।

'आदमी को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए'—यह केवल एक मान्यता मात्र नहीं है। इसके पीछे बहुत बड़ा रहस्य है। हमारे भीतर विद्युत्-शक्ति का एक आयतन है, एक पॉवर हाउस है। उसका स्थान है पृष्ठरज्जु का अन्तिम छोर। पृष्ठरज्जु जहाँ समाप्त होती है वहाँ एक कन्द है। वह है पीछे के हिस्से में, कटिभाग के पास। वहाँ विद्युत्-शक्ति उत्पन्न होती है। वह एक विद्युत् जेनरेटर है, विद्युत् उत्पत्ति का केन्द्र है। जिस व्यक्ति की विद्युत्-शक्ति ऊर्ध्व की ओर जाती है, ऊर्ध्वगामी बन जाती है वह बहुत शक्तिसम्पन्न हो जाता है। ब्रह्मचर्य की साधना से व्यक्ति अपनी ऊर्जा को ऊर्ध्वगामी बनाकर मस्तिष्क तक ले जाता है। उसकी शक्ति बढ़ जाती है। उसका प्राण शक्तिशाली हो जाता है। उसका मनोबल मजबूत हो जाता है और उसमें इतना पराक्रम फूट पड़ता है कि वह जो संकल्प करता है, वह पूरा होता है। वह अपने संकल्प से कभी नहीं हटता, चाहे प्राण ही क्यों न चले जायें। जिसकी प्राणधारा कामवासना के कारण नीचे की ओर प्रवाहित होने लगती है, उसका मनोबल क्षीण हो जाता है, चेतना क्षीण हो जाती है, संकल्प टूट जाता है, मन निराशा से भर जाता है, पग-पग पर विचलन होता है, किसी भी क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ पाता। इसीलिए ब्रह्मचर्य, वाणी का संयम, मन का संयम, एकाग्रता की साधना, ये सारे प्राणशक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाने के उपाय हैं। इनसे मनोबल बढ़ता है और धैर्य मजबूत होता है। ये अध्यात्म नहीं हैं, किन्तु अध्यात्म तक पहुँचने के साधन हैं। नौका के समान हैं। ये सारी नौकाएँ हैं। ये लक्ष्य नहीं, साधन मात्र हैं। हमें पहुँचना कहीं और है। इनको माध्यम बनाकर हम वहाँ पहुँच जाते हैं, जहाँ हमें पहुँचना है। संकल्प किया और अध्यात्म की साधना हो गई—यह बात नहीं है। संकल्प उस व्यक्ति को ही करना पड़ता है जो निशाना मारता है, निशाना मारना जानता है। एक शिकारी जो निशाना मारना जानता है, उसे संकल्प भी करना होता है और एकाग्रता भी करनी होती है। क्या शिकारी की एकाग्रता कम होती है? क्या प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाले निशानेबाजों की एकाग्रता कम होती है? कम नहीं होती। पूरी एकाग्रता होती है तभी लक्ष्य पर तीर लगता है। युद्ध लड़ने वालों में भी संकल्प होता है। द्वितीय विश्व-युद्ध में चर्चिल ने 'वी' का चिह्न दिया था। उसने प्रत्येक योद्धा से कहा—'वी' को सदा अपने समक्ष रखो, हम जीत जायेंगे। यह 'वी' जीतने का दृढ़ संकल्प था। सैनिक में जितना दृढ़ संकल्प होता है, साहस होता है, एकाग्रता होती है, वैसी दूसरे में नहीं होती। तो प्रश्न होता है कि क्या यह संकल्प, साहस, एकाग्रता आत्मोपलब्धि है? अध्यात्म है? नहीं। ये तो साधन मात्र हैं। संकल्प एक साधन है। इच्छाशक्ति एक साधन है। प्राणशक्ति एक साधन है। मनोबल एक साधन है। एकाग्रता एक साधन है। अब इन साधनों को हम किस दिशा में ले जाते हैं, किस दिशा में प्रवाहित करते हैं, यह उद्देश्य पर निर्भर होता है। आत्मा को पाने के लिए भी इनका उपयोग किया जा सकता है और आत्मा से दूर भागने के लिए इनका उपयोग किया जा सकता है। आत्मा की दिशा में भी इनका प्रयोग हो सकता है और आत्म-विरोधी दिशा में भी इनका प्रयोग हो सकता है। ये साधन मात्र हैं, उपकरण हैं। आप इन्हें किस दिशा में प्रयुक्त करते हैं, यह आपके उद्देश्य पर निर्भर है।

जप भी एक साधन है। यह कोई आध्यात्मिक नहीं है। साधन मात्र है, साध्य नहीं है। यह प्राणशक्ति का एक प्रयोगमात्र है। इसमें शब्द और मन—इन दोनों का योग होता है। शब्द और मन—दोनों का समुचित योग होते ही एक शक्ति पैदा होती है। हम बोलते हैं। बोलने के साथ-साथ विद्युत् की तरंगें पैदा होती हैं। हम सोचते हैं। हमारे सोचने के साथ-साथ विद्युत् की तरंगें पैदा होती हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रंग, शब्द, मन और उच्चारण—ये चार मुख्य बातें हैं। रंग का हमारे चिन्तन के साथ और हमारे जीवन के साथ बहुत गहरा सम्बन्ध है। रंग हमारे शरीर को प्रभावित करता है, हमारे मन को प्रभावित करता है। रंग-चिकित्सा पद्धति आज भी चलती है। 'कलर थेरापी' यह पद्धति चल रही है। एक पद्धति है 'कोस्मिक रे थेरापी' अर्थात् दिव्य-किरण-चिकित्सा। इसका भी रंग के साथ सम्बन्ध है। इसका रंग और सूर्य की किरण—दोनों के साथ सम्बन्ध है। प्रकाश के साथ यह संयुक्त है। रंग हमारे शरीर और मन को विविध प्रकार से प्रभावित करता है। उससे रोग मिटते हैं फिर चाहे वे रोग शारीरिक हों या मानसिक। मानसिक रोग चिकित्सा में भी रंग का विशिष्ट स्थान है। पागलपन को रंग के माध्यम से समाप्त कर दिया जाता है। रंग थोड़ा सा विकृत हुआ कि आदमी पागल हो जाता है। रंग की पूर्ति हुई, आदमी स्वस्थ बन जाता है। शरीर में रंग की कमी के कारण अनेक बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। 'कलर थेरापी' का यह सिद्धान्त है कि बीमारी के कोई कीटाणु नहीं होते। रंग की कमी के कारण बीमारी होती है। जिस रंग की कमी हुई है, उसकी पूर्ति कर दो, आदमी स्वस्थ हो जायेगा, बीमारी मिट जायेगी। तो बीमारी का होना या बीमारी का न होना या स्वस्थ होना, यह सारा रंगों के आधार पर होता है।

हमारे चिन्तन के साथ भी रंगों का सम्बन्ध है। आपके मन में खराब चिन्तन आता है, अनिष्ट बात उभरती है, अशुभ सोचते हैं, तब चिन्तन के पुद्गल काले वर्ण के होते हैं। आपकी लेश्या कृष्ण होती है। आप अच्छा चिन्तन करते हैं, हित-चिन्तन करते हैं, शुभ सोचते हैं तब चिन्तन के पुद्गल पीत वर्ण के होते हैं, पीले होते हैं। लाल वर्ण के भी हो सकते हैं और श्वेत वर्ण के भी हो सकते हैं। उस समय तेजोलेश्या होगी या पद्मलेश्या होगी या शुक्ललेश्या होगी। बुरे चिन्तन के पुद्गलों का वर्ण है काला, अच्छे चिन्तन के पद्गलों का वर्ण है पीला या लाल या श्वेत। कितना बड़ा सम्बन्ध है रंग का चिन्तन के साथ। जिस प्रकार का चिन्तन होता है उसी प्रकार का रंग होता है।

शरीर के साथ रंग का गहरा सम्बन्ध है। प्रत्येक व्यक्ति के शरीर के आसपास का एक आभामण्डल है। उसमें अनेक रंग होते हैं। किसी के आभामण्डल का रंग काला होता है, किसी के नीला, किसी के लाल और किसी के सफेद। अनेक वर्णों का भी होता है आभामण्डल। आपकी आँखों को वे रंग नहीं दिखते। पर वे हैं अवश्य ही। ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं है जिसके चारों ओर आभामण्डल न हो। इसका स्वयं पर भी असर होता है और दूसरों पर भी असर होता है। आप किसी व्यक्ति के पास जाकर बैठते हैं। बैठते ही आपके मन में एक परिवर्तन होता है। लगता है कि आपको अपूर्व शान्ति का अनुभव हो रहा है। आपका मन आनन्दित है और अन्दर ही अन्दर एक संगीत चल रहा है। आप किसी दूसरे व्यक्ति के पास जाकर बैठते हैं। अकारण ही उदासी छा जाती है। मन उद्विग्न हो जाता है। मन में क्षोभ और संताप उत्पन्न हो जाता है। वहाँ से उठने की शीघ्रता होती है। यह सब क्यों होता है? भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के पास बैठकर हम भिन्न-भिन्न भावनाओं से आक्रान्त होते हैं। यह सब क्यों और कैसे होता है? इसका कारण है व्यक्ति-व्यक्ति का आभामण्डल, आभावलय। सामने वाले व्यक्ति का जैसा आभामण्डल होगा, आभावलय होगा, उसके रंग होंगे, वे पास वाले व्यक्ति को प्रभावित करते हैं। व्यक्ति चाहे या न चाहे वह उन रंगों से प्रभावित अवश्य ही होता है। जिस व्यक्ति का आभामण्डल श्वेत वर्ण का है, नीले वर्ण का है, पीले वर्ण का है, उसके पास जाकर बैठते ही मन शान्त हो जाता है, शान्ति से भर जाता है, उद्विग्नता मिट जाती है, प्रसन्नता से चेहरा खिल जाता है। जिसका आभामण्डल विकृत है, कृष्ण-वर्ण के पद्गलों से निर्मित है तो उस व्यक्ति के पास जाते ही अकारण ही चिन्ता उभर जाती है, उदासी छा जाती है, मन उद्विग्नता से भर जाता है और ईर्ष्या—द्वेष, बुरे विचार मन में आने लगते हैं। इससे स्पष्ट है कि रंग हमें प्रभावित करते हैं।

एक है रंग, दूसरा है शब्द। हमारे जीवन पर शब्द का असर होता है। मन पर शब्द का असर होता है। शब्द के स्थूल प्रभाव से हम सब परिचित हैं। एक बार स्वामी विवेकानन्द से एक व्यक्ति ने कहा—'शब्द निरर्थक है। उनका प्रभाव या अप्रभाव कुछ भी नहीं होता। वे निर्जीव हैं।' विवेकानन्द ने सुना। कुछ देर मौन रहने के बाद बोले—'बेवकूफ हो तुम। बैठ जाओ।' इतना कहते ही वह व्यक्ति आगबबूला हो गया। उसकी आकृति बदल गयी। आँखें लाल हो गयीं। उसने कहा—'आप इतने बड़े सन्त हैं। मुझे गाली दे दी। शब्दों का ध्यान ही नहीं रहा आपको।' विवेकानन्द ने मुस्कराते हुए कहा—'अभी तो तुम कह रहे थे कि शब्दों में क्या प्रभाव है? और स्वयं एक 'बेवकूफ' शब्द से इतने प्रभावित हो गये और क्रोध में आ गये।' शब्दों में शक्ति होती है। वे प्रभावित करते हैं। यह स्थूल प्रभाव की बात मैंने कही। शब्द का बहुत सूक्ष्म प्रभाव होता है, असर होता है। आज शब्द के द्वारा चिकित्सा होती है। शब्दों के द्वारा आपरेशन होते हैं। आपरेशन में किसी शस्त्र की जरूरत नहीं होती, किसी उपकरण की जरूरत नहीं होती। शब्द की सूक्ष्म तरंगें आ रही हैं और चीड़-फाड़ हो रहा है। कपड़ों की धुलाई होती है शब्दों के द्वारा, सूक्ष्मध्वनि के द्वारा। सूक्ष्मतम ध्वनि से हीरे की कटाई होती है। पुराने जमाने में कहा जाता था कि हीरे से हीरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कटता है। यह मान्य सिद्धान्त था। आज हीरा शब्द की सूक्ष्मध्वनि से कटने लगा है। यन्त्र घूमता है। ध्वनि की सूक्ष्म तरंगें निकलती हैं और सूक्ष्म समय में ही हीरा कट जाता है। ये हैं शब्द के चमत्कार। इनसे आगे हैं—जप और मन्त्र के चमत्कार।

शब्द का उच्चारण छह प्रकार से होता है। उसके छह प्रकार हैं—ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत, सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और परमसूक्ष्म। मन्त्रविद् आचार्यों ने बताया है कि शब्द का ह्रस्व उच्चारण पाप का नाश करता है। दीर्घ उच्चारण लक्ष्मी की वृद्धि करता है, स्त्री की प्राप्ति कराता है और प्लुत उच्चारण ज्ञान की वृद्धि करता है। तीन उच्चारण और हैं—सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और परमसूक्ष्म। ये समापत्ति करते हैं, ध्येय के साथ व्यक्ति को जोड़ देते हैं। ध्येय के साथ व्यक्ति का योग कर देते हैं। आप 'अर्हं' शब्द को लें। आप इसका उच्चारण करते हैं। इसका एक होता है ह्रस्व उच्चारण, एक होता है दीर्घ उच्चारण और एक होता है प्लुत उच्चारण। फिर सूक्ष्म, अतिसूक्ष्म और परमसूक्ष्म। परमसूक्ष्म में आकर हमें लगता है कि हम पहुँच गये। अर्हत् का अनुभव करने लग गये। इन छहों प्रकार के उदाहरणों के भिन्न-भिन्न प्रभाव होते हैं।

इस प्रकार हमें शब्द की शक्ति को पहचानना है, शब्द के अर्थ को समझना है और उच्चारण को भी समझना है।

चौथी बात है—मन। मन को शब्द के साथ जोड़ देना। जिस शब्द का हम जाप कर रहे हैं उसके साथ मन का योग कर देना। इन सबका उचित योग मिलता है तब जप की शक्ति पैदा होती है। कोरी नौका से काम नहीं चलेगा। कोरी माला फेरने से काम नहीं चलेगा। यह हमें जानना होगा, समझना होगा कि नौका के साथ और क्या-क्या आवश्यक होता है नदी पार करने के लिए? यह हमें समझना होगा कि जप के साथ और क्या-क्या आवश्यक होता है? **'णमो अरहंताणं'** बहुत शक्तिशाली मन्त्र है। यह सही है। पर जब इसका उच्चारण भी शुद्ध नहीं होता तब यह फल कैसे देगा? इसका उच्चारण भी किसी उद्देश्य से कैसे होना चाहिए—यह जब तक नहीं जानते तो फिर हम इससे कैसे लाभ उठा पायेंगे? लाभ नहीं पा सकेंगे। अपने अज्ञान और दोष के कारण ही मन्त्र या जप लाभदायी नहीं होता और हम सारा दोष मन्त्र या जप पर थोप देते हैं। हम कह देते हैं कि मन्त्र से कुछ नहीं बना। जप से कुछ लाभ नहीं हुआ। शब्द के उच्चारण के ध्येय को समझना भी बहुत जरूरी है। ये सब बातें जप के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

जप क्या है? ध्येय के साथ एकरस हो जाना ही जप है। यह भी ध्यान है। महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्ति के निरोध को ध्यान माना है। चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ध्यान है। ध्यान का सम्बन्ध चित्त से है। जैन आचार्यों ने कहा—**'ध्यानं त्रिविधम्'**—ध्यान के तीन प्रकार हैं—कायिक ध्यान, वाचिक ध्यान और मानसिक ध्यान। यह एक नया दृष्टिकोण है, नई परम्परा है। शरीर का शिथिलीकरण, शरीर की स्थिरता जो है वह है—कायिक ध्यान। वाचिक जप—वाणी का ध्येय के साथ में योग कर देना, ध्येय और वचन—दोनों में समापत्ति कर देना, दोनों को एकरस कर देना—यह है वाचिक ध्यान। मन का ध्येय के साथ योग कर देना, यह है मानसिक ध्यान। ये तीन प्रकार के ध्यान हैं। जप है—वाचिक ध्यान। यह वचन के द्वारा होने वाला ध्यान है। अर्थात् वचन के माध्यम से हम इतने एकाग्र हो जाते हैं, इतने लीन हो जाते हैं कि हमारा ध्येय और हम दो नहीं रहते।

आप **'णमो अरहंताणं'** का जप करते हैं, लेकिन जब तक अर्हत् की कल्पना आपके मस्तिष्क में ठीक प्रकार से नहीं बैठ जाती और आप मन में यह भावना नहीं करते कि 'मैं स्वयं अर्हत् होता जा रहा हूँ; तब तक **'णमो अरहंताणं'** का लाभ प्राप्त नहीं हो सकता। हाँ, इतना सा लाभ अवश्य होता है कि उच्चारण के द्वारा जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उनसे प्राणशक्ति में कुछ विकास होता है। किन्तु जप के द्वारा आपकी अर्हत् के रूप में जो परिणति होनी चाहिए थी, परिणमन होना चाहिए था, वह नहीं होता। इस बड़े लाभ से वंचित रहना पड़ता है। थोड़ा-सा लाभ प्राप्त होता है। बहुत बार ऐसा होता है कि हम बड़े ध्येय को लेकर चलते हैं, बड़ी बात को सामने रखकर चलते हैं किन्तु बीच में छोटा-सा लाभ होता है तो हम समझ लेते हैं कि लाभ मिल गया। यह बहुत बड़ा खतरा है। विकास के लिए बहुत बड़ा खतरा है। जिस बड़ी बात को लेकर हम चले, आत्मा की उपलब्धि सबसे बड़ी बात है, उसके लिए हम चले, बीच में कुछ प्राप्त हुआ, उसे ही सब कुछ मानकर आगे का प्रयत्न छोड़ देते हैं। उसी में सन्तुष्ट हो जाते हैं। यह सन्तोष भी बहुत बड़ा खतरा है। हमें सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। ये तो रास्ते में ही मिलने वाले यात्री हैं, सहचारी हैं। आदमी यात्रा में चला। थक गया। रास्ते में विश्राम के लिए ठहरा। एक साथी मिल गया। उसके साथ रात भर रहा। बातचीत की। मनोरंजन किया। यदि उसे ही मंजिल मानकर वह वहीं रुक जाये तो वह कभी मंजिल पर नहीं पहुँच पाता। यह बहुत बड़ा खतरा है। ये प्राणविद्या की जितनी बातें हैं ये मध्य में मिलने वाले सहयात्री हैं। मिल जाते हैं, मन बहला लेते हैं। पर वह मंजिल की प्राप्ति नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हमारा ध्येय होगा कि हमें अर्हत् बनना है। अर्हत् वीतराग होते हैं। अर्हत् वे होते हैं जिनमें सारी अर्हताएँ, क्षमताएँ, शक्तियाँ, योग्यताएँ विकसित हो जाती हैं। कुछ भी अविकसित नहीं रहता। उस आत्मा की उपलब्धि का नाम है—अर्हत्। हमें भी अर्हत् होना है। इसीलिए हम **'णमो अरहंताणं'** का जप करते हैं। जप को प्रारम्भ करने से पूर्व हमारे मन में यह भावना होनी चाहिए, यह संकल्प होना चाहिए कि 'मैं अर्हत् हूँ, मैं अर्हत् हूँ'। फिर जप करते समय यह धारणा हो कि 'मैं अर्हत् बन रहा हूँ, मैं अर्हत् बन रहा हूँ'। यह धारणा कर ली, यह भावना कर ली। इसके बाद हमें **'णमो अरहंताणं'** का जाप करना चाहिए। मैं नमस्कार अर्हत् को नहीं कर रहा हूँ, मैं स्वयं अर्हत् बनने के लिए आगे बढ़ रहा हूँ। तो अर्हत् की पूरी प्रतिमा, पूरा चित्र हमारे मस्तिष्क में इस प्रकार स्थिर हो जाये, स्थित हो जाये और फिर उसके आस-पास हमारा शब्द चलता रहे तो वे शब्द की तरंगें वास्तव में हमें अर्हत् के रूप में हमारे पर्याय को बदलने लग जायेंगी। हम स्वयं अर्हत् के रूप में बदलने लग जायेंगे और कुछ दिनों के बाद आपको पता लगेगा कि राग कम हो रहा है, द्वेष कम हो रहा है, वासनाएँ कम हो रही हैं, अर्हताएं जाग रही हैं, शक्तियाँ विकसित हो रही हैं। तब समझना चाहिए कि जप हो रहा है। पूरी सामग्री प्राप्त है। नौका है, नाविक भी मिला है, डांड भी मिला है। सारे उपकरण प्राप्त हैं। नौका को ठीक खेया जा रहा है। यदि सामग्री में कुछ कमी रहती है, कोई विकलता रहती है तो आप जप को दोष देते चले जाइए, जप आपको पीछे छोड़ता चला जायेगा।

★★★

स्वात्मानं स्वात्मनि स्वेन, ध्याते स्वस्मै स्वतो यतः।
षट्कारकमयस्तस्माद्, ध्यानमात्मैव निश्चयात्॥

—**तत्त्वानुशासन** ७४

आत्मा का, आत्मा में, आत्मा द्वारा, आत्मा के लिए, आत्मा से ही ध्यान करना चाहिए। निश्चयदृष्टि से षट्कारकमय यह आत्मा ही ध्यान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org